॥ श्रीहरिः ॥

370

श्रीभगवन्नाम

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवन्नाम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवन्नाम

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरविन्दुभिः॥

(गरुड़पुराण)

'हे मनुष्यो! प्रदीप्त पापाग्निको देखकर भय न करो। गोविन्द-नामरूप मेघोंके जलविन्दुओंसे इसका नाश हो जायगा।'

पापोंसे छूटकर परमात्माके परमपदको प्राप्त करनेके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बतलाये गये हैं। दयामय महर्षियोंने दुःखकातर जीवोंके कल्याणार्थ वेदोंके आधारपर अनेक प्रकारकी ऐसी विधियाँ बतलायी हैं, जिनका यथाधिकार आचरण करनेसे जीव पापमुक्त होकर सदाके लिये निरतिशयानन्द परमात्मसुखको प्राप्त कर सकता है। परन्तु इस समय कलियुग है। जीवनकी अवधि बहुत थोड़ी है। मनुष्योंकी आयु प्रतिदिन घट रही है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापोंकी वृद्धि हो रही है। भोगोंकी प्रबल लालसाने प्रायः सभीको विवश और उन्मत्त बना रखा है। कामनाओंके अशेष कलंकसे बुद्धिपर कालिमा छा गयी है। परिवार, कुटुम्ब, जाति या देशके नामपर होनेवाली विविध भाँतिकी मोहमयी क्रियाओंके तीव्र धार-प्रवाहमें जगत् बह रहा है। देश और उन्नतिके नामपर धर्म, अहिंसा, सत्य और मनुष्यत्वतकका विसर्जन किया जा रहा है। सारे जगत्में कुवासनामय कुप्रवृत्तियोंका ताण्डव नृत्य हो रहा है। शास्त्रोंके कथनानुसार युगप्रभावसे या हमारे दुर्भाग्यदोषसे धर्मका एक पाद भी इस समय केवल नाममात्रको रहा है। आजकलके जीव धर्मानुमोदित सुखसे सुखी होना नहीं चाहते।

सुख चाहते हैं—अटल, अखण्ड और आत्यन्तिक सुख चाहते हैं, परन्तु सुखकी मूलभित्ति धर्मका सर्वनाश करनेपर तुले हुए हैं। ऐसी स्थितिमें सुखके स्वप्नसे भी जगत्‌को केवल निराश ही रहना पड़ता है। हमारी इस दुर्दशाको महापुरुषोंने और भगवद्भक्तोंने पहलेसे ही जान लिया था, इसीसे उन्होंने दयापरवश हो हमारे लिये एक ऐसा उपाय बतलाया, जो इच्छा करनेपर सहजहीमें काममें लाया जा सकता है। परन्तु जिसका वह महान् फल होता है; जो पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञ, तप और दानसे भी नहीं होता था, वह है श्रीहरिनामका जप, कीर्तन और स्मरण। वेदान्तदर्शनके निर्माता भगवान् व्यासदेवरचित भागवतमें ज्ञानिश्रेष्ठ शुकदेवजी महाराज शीघ्र ही मृत्युको आलिंगन करनेके लिये तैयार बैठे हुए राजा परीक्षित्‌से पुकारकर कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(१२। ३। ५१-५२)

'हे राजन्! इस दोषोंसे भरे हुए कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके 'नाम-कीर्तन' से ही मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे और द्वापरमें परिचर्यासे जो पद प्राप्त होता था वही कलियुगमें केवल श्रीहरिनामकीर्तनसे प्राप्त होता है।'

इसीलिये चार सौ वर्ष पूर्व बंगालके नवद्वीप नामक स्थानमें प्रेमावतार श्रीश्रीचैतन्यदेवने अवतीर्ण होकर मुक्तकण्ठसे इसी बातकी घोषणा की थी कि 'भय न करो, सबसे बड़ा प्रायश्चित्त

और परमात्माके प्रेमसम्पादनका परमोत्तम साधन 'श्रीहरिनाम' है। संसारवासनाका परित्याग कर दृढ़ विश्वासके साथ इसीमें लग जाओ और अपना उद्धार कर लो।' उन्होंने केवल ऐसा कहा ही नहीं, बल्कि स्वयं लोगोंके घरोंपर जा-जाकर और अपने परम भागवत साथियोंको भेज-भेजकर येन-केन प्रकारेण लोगोंको हरिनाममें लगाया। जगाई-मधाई-सरीखे प्रसिद्ध पातकी हरिनामपरायण हो गये। लोगोंको इस सन्मार्गमें लगानेके कार्यमें उन्होंने गालियाँ सुनीं, कटूक्तियाँ सहीं, बल्कि श्रीनित्यानन्द और हरिदास आदि भक्तवरोंने तो भीषण प्रहार सहन करके पात्रापात्रका विचार छोड़कर जनतामें हरिनाम वितरण किया।

इसी प्रकार भक्तश्रेष्ठ कबीर, नानक, तुकाराम, रामदास, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, चरणदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, सहजोबाई, दयाबाई, सखूबाई आदि भागवतोंने भी हरिनामको ही जीवोंके कल्याणका प्रधान उपाय समझा और अपनी दिव्यवाणीसे इसीका प्रचार किया। आधुनिक कालमें भी भारतवर्षमें जितने महात्मा-संत हो गये हैं, सभीने एक स्वरसे मुक्तकण्ठ होकर नाम-महिमाका गान किया और कर रहे हैं।

जिस नामका इतना प्रभाव, महत्त्व और विस्तार है, उसपर मुझ-जैसा रसानभिज्ञ मनुष्य क्या लिख सकता है। मेरा तो यह केवल एक तरहका दुःसाहस है, जो संतोंकी कृपा और प्रेमियोंके प्रेमके भरोसेपर ही किया जा रहा है। मैं भगवन्नामकी महिमा क्या लिखूँ? मैं तो नामका ही जिलाया जी रहा हूँ।

शास्त्रोंमें नाम-महिमाके इतने अधिक प्रसंग हैं कि उनकी गणना करना भी बड़ा कठिन कार्य है। इतना होते हुए भी जगत्के सब लोग नामपर विश्वास क्यों नहीं करते। नामका साधन तो कठिन नहीं प्रतीत होता। पूजा, होम, यज्ञ, आदिमें

जितना अधिक प्रयास और सामग्रियोंका संग्रह करना पड़ता है, इसमें वह सब कुछ भी नहीं करना पड़ता। तो भी—

सब लोग नामपरायण क्यों नहीं होते?

इसका उत्तर यह है कि नामपरायण होना जितना मुखसे सहज कहा जाता है, वास्तवमें उतना सहज नहीं है। बड़े पुण्यबलसे नाममें रुचि होती है। शास्त्र पढ़ना, उपदेश देना, बड़े-बड़े शास्त्रार्थ करना सहज है। परन्तु निश्चिन्त मनसे विश्वासपूर्वक भगवान्‌का नाम लेना बड़ा कठिन है।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

कुछ लोग तो इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, जो कुछ ध्यान देते हैं उन्हें इसका सुकरत्व (सहजपन) देखकर अश्रद्धा हो जाती है। वे समझते हैं कि जब बड़े-बड़े यज्ञ, तप, दानादि सत्कर्मोंसे ही पापवासनाका नाश होकर मनकी वृत्तियाँ शुद्ध और सात्त्विक नहीं बनतीं, तब केवल शब्दोच्चारण या शब्दस्मरणमात्रसे क्या हो सकता है? वे लोग इसे मामूली शब्द समझकर छोड़ देते हैं। कुछ लोग पण्डिताईके अभिमानसे, शास्त्रोंके बाह्य अवलोकनसे केवल वाग्वितण्डार्थ शास्त्रार्थपटु होकर नामका आदर नहीं करते। पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त पुरुष तो प्रायः आधुनिक पाश्चात्य-सभ्यताकी मायामरीचिकामें पड़कर ऐसी बातोंको केवल गपेड़ा ही समझते हैं। कुछ सुधारका दम भरनेवाले लोग (संसारका सुधार केवल हमारे बलपर होगा, ईश्वर वस्तु ही क्या है? उसकी आवश्यकता तो घर-बाररहित संन्यासियोंको है, हमें उससे क्या मतलब है? अच्छा काम करेंगे, अच्छा फल आप ही होगा, ऐसी भावनासे) नामका तिरस्कार करते हैं।

भगवन्नामका स्मरण प्रायः विपत्तिकालमें ही हुआ करता है। जब मनुष्यके सब सहारे छूट जाते हैं, कहींसे कोई आशा नहीं

रहती, किसीसे कोई आश्वासन नहीं मिलता, जगत्‌के लोग मुखसे नहीं बोलना चाहते, निर्धनता, निर्जनता, आरोग्यहीनता और अपमानसे मन घबरा उठता है, दुःखोंकी विषमयी ज्वालासे हृदय दग्ध होने लगता है; मित्र, स्नेही, सुहृद् और घरवालोंका एकान्त अभाव हो जाता है, तब प्राण रो उठते हैं। हृदय खोजता है किसी ऐसी शीतल-सुरम्य वस्तुको, जिसे पाकर उसे कुछ शीतलता, कुछ शान्ति प्राप्त हो सके। ऐसे दुःसमयमें छटपटाते हुए व्याकुल प्राण स्वाभाविक ही उस अनजाने और अनदेखे हुए प्रियतमकी गोदका आश्रय ढूँढ़ते हैं, ऐसे अवसरपर बड़े-बड़े शास्त्राभिमानी, शास्त्रार्थमें तर्कयुक्तियोंसे ईश्वरका खण्डन करनेवाले, धन और पदके मदमें ईश्वरको तुच्छ समझनेवाले, विषयोंकी प्रमाद-मदिराके अविरत पानसे उन्मत्त होकर विचरनेवाले मनुष्योंके मुँहसे भी सहसा ऐसे उद्‌गार निकल पड़ते हैं कि 'हे राम! हे ईश्वर! तू ही बचा! तेरे बिना अब और कोई सहारा नहीं है।' ऐसे ही विपद्-संकुल समयमें जिह्वा स्वच्छन्दतासे भगवन्नामका उच्चारण करने लगती है और ऐसे ही शोक-मोहपूर्ण समयमें मन और प्राण भी उसका स्मरण करने लग जाते हैं। इसी लोभसे तो माता कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे विपत्तिका वरदान माँगा था। उसने कहा था कि 'हे कृष्ण! तेरा स्मरण विपत्तिमें ही होता है, इसलिये मुझे बार-बार विपत्तिके जालमें डालता रह!'

तात्पर्य यह कि भगवन्नामका स्मरण प्रायः दुःखकालमें होता है। दुःखी, अनाश्रित और दीनजन ही प्रायः उसका नाम लिया करते हैं, इसलिये कुछ लोग जो विषयोंके बाहुल्यसे मोहवश अपनेको बड़ा बुद्धिमान्, धन-जनवान् और सुखी मानते हैं, भगवन्नाम लेकर अपनी समझसे दीन-दुःखी और अनाश्रितोंकी श्रेणीमें सम्मिलित होना नहीं चाहते।

कुछ ज्ञानाभिमानी लोग ज्ञानके अभिमानमें हरिनामको गौण या मन्द साधन समझकर त्याग देते हैं। जनता अधिकतर संसारमें बड़े लोग कहलानेवालोंके पीछे ही चला करती है। यही सब कारण है कि सब लोग हरिनामके परायण नहीं होते।

एक कारण और है जिससे नामके विस्तारमें बड़ी बाधा पड़ती है, वह है नामको पापका साधन बना लेना। ऐसे लोग संसारमें बहुत हैं जो पाप करनेमें जरा-सा भी संकोच नहीं करते और समझ बैठते हैं कि नाम लेते ही पापका नाश हो जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हरिनाम पापरूपी घासके बड़े ढेरको जलानेके लिये साक्षात् अग्नि है। बड़े-से-बड़े पाप नामके उच्चारणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं।

वैशम्पायनसंहितामें कहा है—

सर्वधर्मबहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥

सर्वधर्मत्यागी और सर्वपापनिरत पुरुष भी यदि हरिनामकीर्तन करता है तो वह पापोंसे छूट जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्वके पापोंका नाश करनेके लिये हरिनाम सबसे बड़ा और शीघ्र फलदायक प्रायश्चित्त है। नामके प्रतापसे पापी-से-पापी मनुष्य भी भगवान्के परम-पदको प्राप्त हो जाता है, परन्तु जो मनुष्य जान-बूझकर हरिनामकी दुहाई देकर मनमें दृढ़ संकल्प करके पापोंमें प्रवृत्त होता है उसका कहीं निस्तार नहीं होता। रोगनिवृत्तिके लिये ही औषधका सेवन किया जाता है; परन्तु जो लोग बीमारी बढ़ानेके लिये दवा लेते हैं उनको सिवा मरनेके और क्या फल मिल सकता है? पद्मपुराणका वचन है—

नाम्नो बलाद् यस्य ही पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।

जो नामका सहारा लेकर पापोंमें प्रवृत्त होता है वह अनेक प्रकारकी यम-यातना भोग करनेपर भी शुद्ध नहीं होता।

जे नर नामप्रताप बल, करत पाप नित आप।
बज्रलेप ह्वै जायँ ते अमिट सुदुष्कर पाप॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि—

परदाररतो वापि परापकृतिकारकः।
संशुद्धो मुक्तिमाप्नोति हरेर्नामानुकीर्तनात्॥

(मत्स्यपुराण)

'परस्त्रीगामी और परपीडनकारी मनुष्य भी हरि-नाम-कीर्तनसे शुद्ध होकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।' इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि भागवतके कथनानुसार चोर, शराबी, मित्रद्रोही, स्त्री, राजा, पिता, गौ तथा ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला, गुरुपत्नीगामी और अन्यान्य बड़े-बड़े पापोंमें रत रहनेवाला पुरुष भी भगवान्‌के नाम-ग्रहणमात्रसे तत्काल मुक्त हो जाता है।

पातक उपपातक महा, जेते पातक और।
नाम लेत तत्काल सब, जरत खरत तेहि ठौर॥

'पहलेके कितने भी बड़े-बड़े पाप संचित क्यों न हों, सच्चे मनसे भगवन्नाम लेते ही वे सब अग्निमें ईंधनकी तरह जल जाते हैं; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भगवन्नाम लेनेवालोंको पाप करनेके लिये छूट मिल जाती है। भगवान्‌का नाम भी लेंगे और साथ-ही-साथ मनमाने पाप भी करते रहेंगे। इस प्रकारकी जिनकी कुवासना है, उनके लिये तो फल उलटा ही होता है। नाम-महिमाकी दुहाई देकर पाप करनेवालेको नरकमें भी जगह नहीं मिलती। जो लोग जान-बूझकर धनके लोभसे चोरी करके, परस्त्रीगमन करके, क्रोध या लोभवश हिंसा करके, गुरु-शास्त्रोंका अपमान करके, मद्यपान, म्लेच्छ-भोजनादि करके,

स्त्रीहत्या-भ्रूणहत्या करके और झूठी गवाही देकर या झूठा मामला सजा करके 'राम-राम' कह देते हैं और अपना छुटकारा मान लेते हैं, उनके पापोंका नाश नहीं होता। उनके पाप तो वज्रलेप हो जाते हैं। ऐसे ही लोगोंको देखकर अच्छे लोग भी नाम-महिमाको अर्थवाद (स्तुतिमात्र) समझकर नामपरायण नहीं होते। परन्तु यह उनकी भूल है—

नाममहिमा केवल रोचक वाक्य नहीं—

यह सर्वथा यथार्थ तत्त्व है। बड़े-बड़े ऋषियों और संत महात्माओंने नाम-महिमाका प्रत्यक्ष अनुभव करके ही उसके गुण गाये हैं। अब भी ऐसे लोग मिल सकते हैं जिन्हें नामकी प्रबल शक्तिका अनेक बार अनेक तरहसे अनुभव हो चुका है। परन्तु वे लोग उन सब रहस्योंको अश्रद्धालु और नामापमानकारी लोगोंके सामने कहना नहीं चाहते, क्योंकि यह भी एक नामका अपराध है—

अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यश्रृण्वति
यश्चोपदेशः शिवनामापराधः।

'अश्रद्धालु, नामविमुख और सुनना न चाहनेवालेको नामका उपदेश करना कल्याणरूप नामका एक अपराध है।'

जो नामके रसिक हैं, जिन्हें इसमें असली रसास्वादका कभी अवसर प्राप्त हो गया है वे तो फिर दूसरी ओर भूलकर भी नहीं ताकते। न उन्हें शरीरकी कुछ परवा रहती है और न जगत्की। मतवाले शराबीकी तरह नाम-प्रेममें मस्त हुए वे कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी गाते हैं, कभी नाचते हैं, उनके लिये फिर कोई अपना-पराया नहीं रह जाता। ऐसे ही प्रेमियोंके सम्बन्धमें महात्मा सुन्दरदासजी लिखते हैं—

प्रेम लग्यो परमेश्वरसों तब भूलि गयो सिगरो घरबारा।
ज्यों उन्मत्त फिरे जित ही तित नेकु रही न सरीर सँभारा॥

स्वास उस्वास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करे नवधा बिधि छाकि पर्‌यो रस पी मतवारा॥

वास्तवमें ऐसे ही पुरुष नामके यथार्थ भक्त हैं और इन्हीं लोगोंद्वारा किया हुआ नामोच्चारण जगत्‌को पावन कर देता है। जहाँतक ऐसी प्रेमकी मस्ती न प्राप्त हो, वहाँतक प्रेममार्गमें भी शास्त्रोंकी मर्यादाका पूरा रक्षण करना चाहिये। भगवान् नारद कहते हैं—

अन्यथा पातित्याशंकया।

(भक्तिसूत्र १३)

'नहीं तो पतित होनेकी आशंका है' अतएव आरम्भमें अपने-अपने वर्णाश्रमानुमोदित सन्ध्या-वन्दन, पिता,माता आदिकी सेवा, परिवारसंरक्षण आदि वैदिक और लौकिक कार्योंको करते हुए श्रीभगवन्नामका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। स्मृतिविहित कर्मोंके त्यागकी आवश्यकता नहीं है, यथासमय और यथास्थान उनका आचरण अवश्य करना चाहिये। रामनाम ऐसा धन नहीं है जो ऐसे-वैसे कामोंमें खर्च किया जाय। जो मनुष्य मामूली-सा काँचका टुकड़ा खरीदने जाकर बदलेमें बहुमूल्य हीरा दे आता है वह कभी बुद्धिमान् नहीं कहलाता। इसी प्रकार जो कार्य लौकिक या स्मृतिविहित कर्मोंके आचरणसे सिद्ध हो सकता है, उसमें नामका प्रयोग करना राजाधिराजसे झाड़ू दिलवानेके समान है—सोनेको मिट्टीके भाव बेचनेके समान है; अतएव नाम-जपमें स्मृतिविहित कर्मोंके त्यागकी कोई आवश्यकता नहीं।

कुछ लोगोंकी यह शंका है कि आजकल नाम लेनेवाले तो बहुत लोग देखे जाते हैं, परन्तु उनकी दशा देखते हैं तो मालूम होता है कि उनको कोई लाभ नहीं हुआ। जिस नामके एक बार उच्चारण करनेमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश होना बतलाया जाता

है उस नामकी लाखों बार आवृत्ति करनेपर भी लोग पापोंमें प्रवृत्त और दुःखी देखे जाते हैं, इसका क्या कारण है? इसके उत्तरमें पहली बात तो यह है कि लाखों बार नामकी आवृत्ति उनके द्वारा वस्तुतः होती नहीं, धोखेसे समझ ली जाती है। दूसरा कारण यह है कि उनकी नाममें यथार्थ श्रद्धा नहीं है। नामके इस माहात्म्यमें उन्हें स्वयं ही संशय है। भगवान्ने गीतामें कहा है—'**संशयात्मा विनश्यति**' इसीलिये उन्हें पूरा लाभ नहीं होता। भजनमें श्रद्धा ही फलसिद्धिका मुख्य साधन है। अवश्य ही भजन करनेवालेमें श्रद्धाका कुछ अंश तो रहता ही है। यदि श्रद्धाका सर्वथा अभाव हो तो भजनमें प्रवृत्ति ही न हो। बिना किंचित् श्रद्धा हुए किसी कार्यविशेषमें प्रवृत्त होना बड़ा कठिन है। अतएव जो नाम ग्रहण करते हैं उनमें श्रद्धाका कुछ अंश तो अवश्य है, परन्तु श्रद्धाके उस क्षुद्र अंशकी अपेक्षा संशयकी मात्रा कहीं अधिक है, इसीलिये उन्हें वास्तविक फलसे वंचित रहना पड़ता है। गंगास्नानसे पापोंका अशेष नाश होना बतलाया गया है, परन्तु नित्य गंगास्नान करनेवाले लोग भी पापमें प्रवृत्त होते देखे जाते हैं (यद्यपि एक बारका भी भगवन्नाम हजारों बारके गंगास्नानसे बढ़कर है)।

श्रद्धापर एक दृष्टान्त

एक समय शिवजी महाराज पार्वतीके साथ हरिद्वारमें घूम रहे थे। पार्वतीने देखा कि सहस्रों मनुष्य गंगामें नहा-नहाकर हर-हर करते चले जा रहे हैं; परन्तु प्रायः सभी दुःखी और पापपरायण हैं। पार्वतीने बड़े आश्चर्यके साथ शिवजीसे पूछा कि 'हे देवदेव! गंगामें इतनी बार स्नान करनेपर भी इनके पाप और दुःखोंका नाश क्यों नहीं हुआ? क्या गंगामें सामर्थ्य नहीं रही?' शिवजीने कहा—'प्रिये! गंगामें तो वही सामर्थ्य है; परन्तु इन

लोगोंने पापनाशिनी गंगामें स्नान ही नहीं किया है तब इन्हें लाभ कैसे हो?' पार्वतीने साश्चर्य कहा कि 'स्नान कैसे नहीं किया? सभी तो नहा-नहाकर आ रहे हैं? अभीतक इनके शरीर भी नहीं सूखे हैं।' शिवजीने कहा—'ये केवल जलमें डुबकी लगाकर आ रहे हैं। तुम्हें कल इसका रहस्य समझाऊँगा।' दूसरे दिन बड़े जोरकी बरसात होने लगी। गलियाँ कीचड़से भर गयीं। एक चौड़े रास्तेमें एक गहरा गड्ढा था, चारों ओर लपटीला कीचड़ भर रहा था। शिवजीने लीलासे ही वृद्धरूप धारण कर लिया और दीन—विवशकी तरह गड्ढेमें जाकर ऐसे पड़ गये जैसे कोई मनुष्य चलता-चलता गड्ढेमें गिर पड़ा हो और निकलनेकी चेष्टा करनेपर भी न निकल सकता हो।

पार्वतीको यह समझाकर गड्ढेके पास बैठा दिया कि 'देखो! तुम लोगोंको सुना-सुनाकर यों पुकारती रहो कि मेरे वृद्ध पति अकस्मात् गड्ढेमें गिर पड़े हैं, कोई पुण्यात्मा इन्हें निकालकर इनके प्राण बचावे और मुझ असहायकी सहायता करे।' शिवजीने यह और समझा दिया कि जब कोई गड्ढेमेंसे मुझे निकालनेको तैयार हो तब इतना और कह देना कि 'भाई! मेरे पति सर्वथा निष्पाप हैं, इन्हें वही छुए जो स्वयं निष्पाप हो। यदि आप निष्पाप हैं तो इनके हाथ लगाइये, नहीं तो हाथ लगाते ही आप भस्म हो जायँगे।' पार्वती 'तथास्तु' कहकर गड्ढेके किनारे बैठ गयीं और आने-जानेवालोंको सुना-सुनाकर शिवजीकी सिखायी हुई बात कहने लगीं। गंगामें नहाकर लोगोंके दल-के-दल आ रहे हैं। सुन्दरी युवतीको यों बैठी देखकर कइयोंके मनमें पाप आया, कई लोक-लज्जासे डरे तो कइयोंको कुछ धर्मका भय हुआ, कई कानूनसे डरे, कुछ लोगोंने तो पार्वतीको यह सुना भी दिया कि मरने दे बुड्ढेको! क्यों इसके लिये रोती है? आगे

और कुछ भी कहा, मर्यादा भंग होनेके भयसे वे शब्द लिखे नहीं जाते। कुछ दयालु सच्चरित्र पुरुष थे, उन्होंने करुणावश हो युवतीके पतिको निकालना चाहा, परन्तु पार्वतीके वचन सुनकर वे भी रुक गये। उन्होंने सोचा कि हम गंगामें नहाकर आये हैं तो क्या हुआ पापी तो हैं ही, कहीं होम करते हाथ न जल जायँ। बुड्ढेको निकालने जाकर इस स्त्रीके कथनानुसार हम स्वयं भस्म न हो जायँ। सुतरां, किसीका साहस नहीं हुआ। सैकड़ों आये, सैकड़ोंने पूछा और चले गये। सन्ध्या हो चली। शिवजीने कहा— 'पार्वती! देखा, आया कोई गंगामें नहानेवाला?'

थोड़ी देर बाद एक जवान हाथमें लोटा लिये हर-हर करता हुआ निकला, पार्वतीने उससे भी वही बात कही। युवकका हृदय करुणासे भर आया। उसने शिवजीको निकालनेकी तैयारी की। पार्वतीने रोककर कहा कि 'भाई! यदि तुम सर्वथा निष्पाप नहीं होओगे तो मेरे पतिको छूते ही जल जाओगे।' उसने उसी क्षण बिना किसी संकोचके दृढ़ निश्चयके साथ पार्वतीसे कहा कि 'माता! निष्पाप होनेमें तुझे सन्देह क्यों होता है? देखती नहीं, मैं अभी गंगा नहाकर आया हूँ। भला, गंगामें गोता लगानेके बाद भी कभी पाप रहते हैं? तेरे पतिको निकालता हूँ।' युवकने लपककर बूढ़ेको ऊपर उठा लिया। शिव-पार्वतीने उसे अधिकारी समझकर अपना असली स्वरूप प्रकटकर उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया। शिवजीने पार्वतीसे कहा कि 'इतने लोगोंमेंसे इस एकने ही वास्तवमें गंगा-स्नान किया है। इसी दृष्टान्तके अनुसार जो लोग बिना श्रद्धा और विश्वासके केवल दम्भके लिये नाम-ग्रहण करते हैं, उन्हें वास्तविक फल नहीं मिलता, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि नाम-ग्रहण व्यर्थ जाता है।

नामका फल अवश्य होता है—

परन्तु जैसा चाहिये वैसा नहीं होता। दम्भार्थ नाम लेनेवाले भी संसारमें पूजे जाते हैं। उनके पापोंका नाश भी होता ही है; परन्तु अनन्त जन्मोंके संचित और इस समय भी लगातार होनेवाले अनन्त पाप श्रद्धारहित नामसे पूरे नष्ट नहीं हो पाते। नामसे पूरा फल प्राप्त न होनेमें श्रद्धाके अतिरिक्त एक और प्रधान कारण है—

साधकका सकाम भाव!

हम बहुत बड़ी मूल्यवान् वस्तुको बहुत सस्ते दामोंपर बेच देते हैं। सिरमें मामूली दर्द होता है तो उसे मिटानेके लिये 'राम-नाम' कहते हैं। सौ-पचास रुपयोंकी कमाईके लिये राम-नाम लेते हैं। स्त्री-बच्चोंकी आरोग्यताके लिये राम-नाम लेते हैं। मान-बड़ाई पानेके लिये राम-नाम कहते हैं। संतान-सुखके लिये राम-नाम कहते हैं। फल यह होता है कि हम राम-नाम लेनेपर भी कमानेके साथ ही लुटानेवाले मूर्खके समान जैसे-के-तैसे ही रह जाते हैं। चलनीमें जितना भी पानी भरते रहो, सभी निकल जायगा। हमारा अन्तःकरण भी कामनाओंके अनन्त छेदोंसे चलनी हो रहा है। इसमें कुछ भी ठहरता नहीं। राम-नामका फल कैसे हो? प्यास लगी हुई है, जगत्‌में सुखकी पिपासा किसको नहीं है? पवित्र जलका भी झरना झर रहा है, राम-नामके झरनेका प्रवाह सदा ही अबाधित रूपसे बहता है, परन्तु हम अभागे उस झरनेके आगे अंजलि बाँधकर जल ग्रहण नहीं करते। हम उसके आगे रखते हैं हजारों छेदोंवाली चलनी; जिसमें न तो कभी पानी ठहरता है और न हमारी प्यास ही बुझती है! सकामभावसे लिये हुए नामसे भी नामके असली फल—आत्यन्तिक सुखसे हम इसी प्रकार वंचित रह जाते हैं। प्रथम तो

कोई भगवन्नाम लेता ही नहीं और यदि कोई लेता है तो वह सकामभावसे, धन-सन्तान, मान-बड़ाईकी वृद्धिके लिये लेता है। नियमानुसार फलमें जहाँ-का-तहाँ ही रहना पड़ता है। परन्तु नामकी महिमा अपार है। इस प्रकार लिये हुए नामसे भी फल तो होता ही है। सकाम कर्मकी सिद्धि भी होती है और आगे चलकर भगवद्भक्ति भी प्राप्त होती है। जब इन पंक्तियोंका क्षुद्र लेखक सकामभावसे नाम-जप किया करता था तब कई बार उसकी ऐसी विपत्तियाँ टली हैं जिनके टलनेकी कोई भी आशा नहीं थी। केवल वे विपत्तियाँ ही नहीं टलीं, उसका और फल भी हुआ। नाममें रुचि बढ़ी और आगे चलकर निष्कामभाव भी हो गया। भगवन्नाम लेनेका अन्तिम परिणाम है भगवान्‌में एकान्त प्रेम हो जाना। एकान्त प्रेम होनेके बाद प्रेममयके मिलनेमें जरा-सा भी विलम्ब नहीं होता, जैसे ध्रुवको और विभीषणको राज्यकी भी प्राप्ति हुई और भगवत्प्रेमकी भी। इसीलिये शास्त्रोंमें चाहे जैसे भगवन्नाम लेनेवालेको भी बड़ा उत्तम बतलाया है। भगवान्‌ने गीतामें इसीलिये अर्थार्थी भक्तको भी उदार और पुण्यात्मा बतलाया है और अन्तमें **'मद्भक्ता यान्ति मामपि'** कहकर चाहे जिस प्रकार भी भगवद्भक्ति करनेवालेको अपनी प्राप्ति कही है; क्योंकि सकामभावसे अन्य सबकी आशा छोड़कर, अन्य सबका आश्रय त्यागकर केवल भगवान्‌की भक्तिके परायण होना भी बड़े भारी पुण्योंका फल है। अतएव सकामभावसे भगवान्‌के नाम ग्रहण करनेवाले लोग भी बड़े पूज्य और मान्य हैं; परन्तु उनको सकामभावकी प्रतिबन्धकताके कारण नामके वास्तविक फल नामीके प्रेमकी या स्वयं नामीकी प्राप्तिमें विलम्ब अवश्य हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि नामसे फल तो अवश्य होता है; परन्तु अश्रद्धा, अविश्वास और

कामनाके कारण उसके असली फलकी प्राप्तिमें देर हो जाती है। यदि साधक इस अपने दोषसे होनेवाली देरीका दोष नामपर लगाकर उसे अर्थवाद कहता है तो यह भी उसका अपराध है।

नामके दस अपराध

बतलाये गये हैं—(१) सत्पुरुषोंकी निन्दा, (२) नामोंमें भेदभाव, (३) गुरुका अपमान, (४) शास्त्रनिन्दा, (५) हरिनाममें अर्थवाद (केवल स्तुतिमात्र है ऐसी कल्पना), (६) नामका सहारा लेकर पाप करना, (७) धर्म, व्रत, दान और यज्ञादिके साथ नामकी तुलना, (८) अश्रद्धालु, हरि-विमुख और सुनना न चाहनेवालेको नामका उपदेश करना, (९) नामका माहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम न करना और (१०) 'मैं'-'मेरे' तथा भोगादि विषयोंमें लगे रहना।

यदि प्रमादवश इनमेंसे किसी तरहका नामापराध हो जाय तो उससे छूटकर शुद्ध होनेका उपाय भी पुनः नाम-कीर्तन ही है। भूलके लिये पश्चात्ताप करते हुए नाम-कीर्तन करनेसे नामापराध छूट जाता है। पद्मपुराणका वचन है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥

नामापराधी लोगोंके पापोंको नाम ही हरण करता है। निरन्तर नाम-कीर्तनसे सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। नामके यथार्थ माहात्म्यको समझकर जहाँतक हो सके, नाम लेनेमें कदापि इस लोक और परलोकके भोगोंकी जरा-सी भी कामना नहीं करनी चाहिये। यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार नाम-जपसे कामनासिद्धिके सिवा अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भगवद्भक्तिरूप विशेष फल भी मिलता है, परन्तु नियम यही है कि जैसी कामना हो—सांगोपांग कर्म होनेपर—वैसा ही फल मिल जाय। जो लोग भगवन्नामका

साधारण बातोंमें प्रयोग करते हैं वे वास्तवमें भगवन्नामकी अपार महिमासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं या उसपर उनका विश्वास नहीं है। जो रत्नके मूल्यसे अनभिज्ञ होगा वही उसे काँचके मोलपर बेचेगा।

भगवन्नामके मूल्यपर एक दृष्टान्त

एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन गाँवके बाहर एक महात्माके पास जाया करता था। जब महात्माकी सेवा करते-करते उसे बहुत दिन बीत गये तब महात्माने उसे अधिकारी समझकर कहा कि 'वत्स! तेरी मति भगवान्‌में है, तू श्रद्धालु है, गुरुसेवापरायण है, कुतार्किक नहीं है, साधनमें आलसी नहीं है, शास्त्रके वचनोंमें विश्वासी है, किसीका बुरा नहीं चाहता, किसीसे घृणा और द्वेष नहीं करता, सरलचित्त है काम, क्रोध, लोभसे डरता है, संतोंका उपासक है और जिज्ञासु है; इसलिये तुझे एक ऐसा गोपनीय मन्त्र देता हूँ जिसका पता बहुत ही थोड़े लोगोंको है। यह मन्त्र परम गुप्त और अमूल्य है, किसीसे कहना नहीं।' यों कहकर महात्माने उसके कानमें धीरेसे कह दिया 'राम'। श्रद्धालु भक्त मन्त्रराज 'राम' का जप करने लगा। वह एक दिन गंगा नहाकर लौट रहा था तो उसका ध्यान उन लोगोंकी तरफ गया जो हजारोंकी संख्यामें उसीकी तरह गंगा नहाकर जोर-जोरसे 'राम-राम' पुकारते चले आ रहे थे। सुनता तो रोज ही था। परन्तु कभी इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था। आज ध्यान जाते ही उसके मनमें यह विचार आया कि महात्मा तो राममन्त्रको बड़ा गुप्त बतलाते थे, मुझसे कह भी दिया था कि किसीसे कहना नहीं; परन्तु इसको तो सभी जानते हैं, हजारों मनुष्य 'राम-राम' पुकारते हुए चलते हैं। उसके मनमें कुछ संशय उत्पन्न हो गया। वह अपने घर न जाकर सीधा गुरुके समीप गया। महात्माने कहा कि 'वत्स! आज इस समय कैसे आया!' उसने

अपना संशय सुनाकर कहा कि 'प्रभो! मेरे समझनेमें भ्रम हुआ है या इसका और कोई मतलब है। अपनी दिव्य वाणीसे मेरा संदेह दूर करनेकी कृपा कीजिये!' महात्माने उसके मनकी बात जान ली और कहा कि 'भाई! तेरे प्रश्नका उत्तर पीछे दिया जायगा। पहले तू मेरा एक काम कर!' महात्माने झोलीमेंसे एक चमकती हुई काँचकी-सी गोली निकाली और उसे भक्तके हाथमें देकर कहा कि—'बाजारमें जाकर इसकी कीमत करवाके लौट आ। बेचना नहीं है, सिर्फ कीमत जाननी है। सावधान! कीमत आँकानेमें कहीं भूल न हो जाय!' भक्त श्रद्धालु था, आजकल-सा कोई होता तो पहले ही गुरु महाराजको आड़े हाथों लेता और कहता कि मैं तुम्हारे काँचके टुकड़ेकी कीमत जँचवाने नहीं आया हूँ, तुम्हारा कोई गुलाम नहीं हूँ। पहले मेरे प्रश्नका उत्तर दो, नहीं तो मेरे साथ छल करनेके अपराधमें तुमपर कोर्टमें नालिश की जायगी।' वह समय दूसरा था। भक्त अपना प्रश्न वहीं छोड़कर गुरुका काम करनेके लिये बाजारमें गया। सबसे पहले एक शाक बेचनेवाली मिली। भक्तने गुरुकी चीज उसे दिखाकर कहा कि 'इसकी क्या कीमत देगी?' शाक बेचनेवालीने पत्थरकी चमक और सुन्दरता देखकर सोचा कि बच्चोंके खेलनेके लिये काँचकी बड़ी सुन्दर गोली है। बाजारमें कहीं ऐसी नहीं मिलती। उसने कहा—'सेर-दो-सेर आलू और बैगन ले लो।' वह आगे बढ़ा, एक सोनारकी दूकान थी, वहाँ ठहरा। सुनारको गोली दिखाकर पूछा—'भाई! इसकी क्या कीमत दोगे?' सुनारने हाथमें लेकर देखा और उसे अच्छा पुखराज (नकली हीरा) समझकर सौ रुपये देनेको कहा। भक्तकी भी दिलचस्पी बढ़ी, वह और आगे बढ़ा, एक महाजनके यहाँ गया। महाजनने गोली देखकर मनमें विचार किया कि इतना बड़ा और ऐसा अच्छा हीरा तो जगत्में कहाँसे होगा? है तो पुखराज ही, परन्तु हीरा-सा

लगता है। बड़े घरमें नकली भी असली ही समझा जाता है, उसने हजार रुपयोंमें माँगा। भक्तने सोचा कि हो न हो, है तो कोई बड़ी मूल्यवान् वस्तु, वह और आगे बढ़ा और एक जौहरीकी दूकानपर गया। जौहरीने परीक्षा की तो उसे हीरा ही मालूम दिया, परंतु इतना बड़ा और ऐसा हीरा कभी उसने देखा ही न था; इसलिये उसे कुछ सन्देह रहा तथापि उसने एक लाख रुपयोंमें उसे माँगा। भक्त 'बेचना नहीं है' कहकर एक सबसे बड़े जौहरीकी दूकानपर गया। जब गुरुके पाससे आया था तब तो उसे जौहरियोंके पास जानेका साहस ही नहीं था। वह स्वयं उसे मामूली काँच समझता था, परन्तु ज्यों-ज्यों कीमत बढ़ती गयी त्यों-त्यों उसका भी साहस बढ़ता गया। बड़े जौहरीने हीरा देखकर कहा कि 'भाई! यह तो अमूल्य है। इस देशकी सारी जवाहरात इसके मूल्यमें दे दी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता। इसे बेचना नहीं।' यह सुनकर भक्तने विचार किया कि अब तो सीमा हो चुकी।

वह लौटकर महात्माके पास गया और बोला कि 'महाराज! इसकी कीमत कोई कर ही नहीं सकता, यह तो अमूल्य वस्तु है, गुरुने पूछा कि 'तुमको यह किसने बताया?' भक्तने कहा कि 'प्रभो! मैंने यहाँसे बाजारमें जाकर पहले शाकवालीसे पूछा तो सेर-दो-सेर शाक देना स्वीकार किया, सुनारने सौ रुपये कहे, महाजनने हजार, जौहरीने लाख और अन्तमें सबसे बड़े जौहरीने इसे अमूल्य बतलाते हुए यह कहा कि 'यदि देशकी सारी जवाहरात इसके बदलेमें दे दी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता।' महात्माने उससे रत्न लेकर अपनी झोलीमें रख लिया। भक्तने कहा कि 'महाराज! अब मेरी शंका-निवारण कीजिये।' महात्माने कहा—'भाई! मैं तो तुझे शंका-निवारणके लिये दृष्टान्तसहित उपदेश दे चुका। तूने अभी नहीं समझा,इसलिये फिर समझाता हूँ। इस रत्नकी कीमत करानेमें

ही तेरी शंका दूर होनी चाहिये थी। रत्न अमूल्य था; परंतु उसकी असली पहचान केवल सबसे बड़े जौहरीको ही हुई, दूसरे नहीं पहचान सके। यदि मैंने तुझे बेचनेके लिये आज्ञा दे दी होती तो तू दो सेरके बदले पाँच-सात सेर शाकके मूल्यपर इसे बेच ही देता, आगे बढ़ता ही नहीं। अमूल्य वस्तु कौड़ीके मूल्य चली जाती। कितना बड़ा नुकसान होता ? इसी प्रकार श्रीराम-नाम भी गुप्त और अमूल्य पदार्थ है, इसकी पहचान सबको नहीं है और न इसका मूल्य ही सब कोई जानते हैं। चीज हाथमें होनेपर भी जबतक उसकी पहचान नहीं होती, तबतक उसका असलीपन गुप्त ही रहता है। इसी तरह राम-नामके असली महत्त्वको भी बहुत कम लोग जानते हैं। जो राम-नामका व्यवसाय करते हैं वे बेचारे बड़े दयाके पात्र हैं; क्योंकि वे इस अमूल्य धन राम-नामको कौड़ीके मूल्यपर बेच देते हैं। इसीसे परम मूल्यवान् रत्नको दो सेर शाकके बदलेमें बेच देनेवाले मूर्खके समान वे सदा ही भक्ति और प्रेममें दरिद्री ही रहते हैं। भक्ति और प्रेमके हुए बिना परमात्मा नहीं मिलते और परमात्माको प्राप्त किये बिना दुःखोंसे कभी छुटकारा नहीं हो सकता। दुःखोंकी आयन्तिक निवृत्ति परमात्माको प्राप्त करनेमें ही है और उस—

—परमात्माकी प्राप्तिका परम साधन श्रीभगवन्नाम है—

इसलिये भगवन्नामका किसी भी दूसरे काममें प्रयोग नहीं करना चाहिये। भगवन्नाम लेना चाहिये केवल भगवन्नामके लिये। भगवन्नामके लिये भी नहीं, उसके प्रेमके लिये—प्रेमके लिये भी नहीं परंतु इसलिये कि लिये बिना रहा नहीं जाता। मनकी वृत्तियाँ ऐसी बन जानी चाहिये कि जिससे भजन हुए बिना एक क्षण भी चैन नहीं पड़े। जैसे श्वास रुकते ही गला घुट जाता है—प्राण अत्यन्त व्याकुल होकर छटपटाने लगते हैं, इसी प्रकार भजनमें जरा-सी भूल

होनेसे, क्षणभरके लिये भी भजन छूटनेमें प्राण छटपटाने लगें। इसीलिये भगवान् नारद कहते हैं—

अव्यावृतभजनात्।

(भक्तिसूत्र ३६)

—तैलधारावत् निरन्तर भजन करनेसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। भजनमें सबसे पहले नामकी आवश्यकता है। जिसका भजन करना होता है, सर्वप्रथम उसका नाम जानना पड़ता है इसलिये नाम ही भजनका मूल है। इस—

—नाम-भजनके कई प्रकार—

—हैं—जप, स्मरण और कीर्तन! इनमें सबसे पहले जपकी बात कही जाती है। परमात्माके जिस नाममें रुचि हो, जो अपने मनको रुचिकर हो, उसी नामकी परमात्माकी भावनासे बारंबार आवृत्ति करनेका नाम जप है। जपकी शास्त्रोंमें बड़ी महिमा है। जपको यज्ञ माना है और श्रीगीताजीमें भगवान्के इस कथनसे कि '**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' (यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूँ) जपका महत्त्व बहुत ही बढ़ गया है। जपके तीन प्रकार हैं साधारण, उपांशु और मानस। इनमें पूर्व-पूर्वसे उत्तर-उत्तर दस गुण अधिक फलदायक है। भगवान् मनु कहते हैं—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥

'दर्श-पौर्णमासादि विधियज्ञोंसे (यहाँ मनु महाराजने भी विधियज्ञोंसे जपयज्ञको ऊँचा मान लिया है) साधारण जप दस गुण श्रेष्ठ है, उपांशु जप सौ गुण श्रेष्ठ है और मानस जप हजार गुण श्रेष्ठ है।'

जो फल साधारण जपके हजार मन्त्रोंसे होता है वही फल उपांशु जपके सौ मन्त्रोंसे और मानस जपके एक मन्त्रसे हो जाता है। उच्च-

स्वरसे होनेवाले जपको साधारण जप कहते हैं (परंतु यह कीर्तन नहीं है), जिसमें जीभ और होंठ तो हिलते हैं; परंतु शब्द अंदर ही रहता है, वह उपांशु जप है और जिसमें न जीभके हिलानेकी आवश्यकता होती है और न होंठके, वह मानस जप कहलाता है। उच्चस्वरसे उपांशु उत्तम और उपांशुसे मानसिक उत्तम है। यह मन्त्रजपकी विधि है, किसी भी देवताका कैसा ही मन्त्र क्यों न हो, यह विधि सबके लिये एक-सी है। यह विधि असलमें मन्त्रकी दृष्टिसे है। भगवन्नाम मन्त्र भी है। अतएव जहाँ मन्त्रकी भावना है, वहाँ इस विधिकी आवश्यकता है। नामकी दृष्टिमें यह बात नहीं है, वहाँ तो चाहे जैसे भी जपे—सभी प्रकार मंगलमय है, कोई विधि-निषेध है ही नहीं। यह नामकी अलौकिक महिमा है। भगवन्नाममें शुद्धि-अशुद्धिकी भी कोई बात नहीं है।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः॥

अपवित्र हो, पवित्र हो, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करते ही बाहर और भीतरकी शुद्धि हो जाती है। जल-मृत्तिकासे केवल बाहरकी ही शुद्धि होती है; परंतु भगवन्नाम अन्तरके मलोंको भी अशेषरूपसे धो डालता है, इसका किसीके लिये किसी अवस्थामें भी कोई निषेध नहीं है।

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

कलिसन्तरणोपनिषद्—

—में नाम-जपकी विधि और उसके फलका बड़ा सुन्दर वर्णन है, पाठकोंके लाभार्थ उसे यहाँ उद्‌धृत किया जाता है।

हरिः ॐ। द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति॥ १॥

द्वापरके समाप्त होनेके समय श्रीनारदजीने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा कि 'हे भगवन्! मैं पृथ्वीकी यात्रा करनेवाला कलियुगको कैसे पार करूँ?'

स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽसि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति॥ २॥

'ब्रह्माजी बोले कि तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। सम्पूर्ण श्रुतियोंका जो गूढ़ रहस्य है, जिससे कलि-संसारसे तर जाओगे, उसे सुनो। उस आदिपुरुष भगवान् नारायणके नामोच्चारणमात्रसे ही कलिके पातकोंसे मनुष्य मुक्त हो सकता है।'

नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति। स होवाच हिरण्यगर्भः।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥ इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्य आवरणविनाशनम्॥ ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति॥ ३॥

'श्रीनारदजीने फिर पूछा कि वह भगवान्का नाम कौन-सा है?' ब्रह्माजीने कहा वह नाम है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥*

इन सोलह नामोंके उच्चारण करनेसे कलिके सम्पूर्ण पातक

---

* इस मन्त्रमें भगवान्के तीन नाम हैं—हरि, राम और कृष्ण।' इनमें 'हरि' शब्दका अर्थ है—'**हरति योगिचेतांसीति हरिः**' जो योगियोंके चित्तोंको हरण करता है वह हरि है अथवा '**हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥**' जैसे अनिच्छासे स्पर्श कर लेनेपर भी अग्नि जला

नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण वेदोंमें इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं देखनेमें आता। इन सोलह कलाओंसे मुक्त पुरुषका आवरण (अज्ञानका परदा) नष्ट हो जाता है और मेघोंके नाश होनेसे जैसे सूर्यकिरणसमूह प्रकाशित होता है वैसे ही आवरणके नाशसे ब्रह्मका प्रकाश हो जाता है।

पुनर्नारदः पप्रच्छ भगवन् कोऽस्य विधिरिति। तं होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति॥ ४॥

'नारदजीने फिर पूछा कि हे भगवन्! इसकी क्या विधि है?' ब्रह्माजीने कहा कि (कोई विधि नहीं है। सर्वदा शुद्ध हो या अशुद्ध, नामोच्चारणमात्रसे ही सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य-मुक्ति मिल जाती है।'

यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटिर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। वृषलीगमनात् पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात् सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इत्युपनिषत्॥ ५॥

ब्रह्माजी फिर कहने लगे कि यदि कोई पुरुष इन सोलह नामोंके

देती है, इसी प्रकार दुष्टचित्तसे भी स्मरण किया हुआ जो हरि पापोंको हर लेता है उसे हरि कहते हैं। 'राम' शब्दका अर्थ है—'**रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः**' जिसमें योगिगण रमण करते हैं उसका नाम राम है अथवा '**रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥**' जिस अनन्त चिदात्मा परब्रह्ममें योगिगण रमण करते हैं, वह राम है। 'कृष्ण' शब्दका अर्थ है '**कर्षति योगिनां मनांसीति कृष्णः**' जो योगियोंके चित्तको आकर्षण करता है वह कृष्ण है अथवा '**कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥**' कृषि भू याने सत्तावाचक है और ण निर्वृतिवाचक है, इन दोनोंकी एकता होनेपर परब्रह्म कृष्ण कहलाता है।

साढ़े तीन करोड़ जप कर ले तो वह ब्रह्महत्या, स्वर्णकी चोरी, शूद्र-स्त्री-गमन और सर्वधर्मत्यागरूपी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह तत्काल मुक्तिको प्राप्त होता है। तत्काल ही मुक्तिको प्राप्त होता है।'

जपकी विधि

इससे यह सिद्ध हो गया कि स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण, अन्त्यज, गृही-वनवासी, शुद्ध-अशुद्ध, विद्वान्-मूर्ख कोई भी किसी भी प्रकारसे इस षोडश नामके साढ़े तीन करोड़ मन्त्रोंका जप कर लेता है वह समस्त महापातकों, उनके फलस्वरूप नरकों और स्वर्गादि मोक्षमार्गके प्रतिबन्धकोंसे छूटकर परमात्माके सच्चिदानन्दघनस्वरूपको अनायास ही प्राप्त हो जाता है। कितना सहज और सस्ता उपाय है? यदि मनुष्य प्रतिदिन लगभग ६,५०० मन्त्रोंका जप करे (जो सोलह नामके मन्त्रकी लगभग ६१ मालाओंमें हो जाता है) तो केवल १५ वर्षमें साढ़े तीन कोटि जप-संख्या पूरी हो जाती है। यह तो साधारण जप-विधिकी बात है। उपांशु या मनसे जप हो तो बहुत ही शीघ्र सफलता मिल सकती है।

जिस परमात्माको प्राप्त करनेके लिये लाखों-करोड़ों जन्मोंतक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जिस परमात्मसुखको पानेके लिये अनन्त जन्मोंकी साधनाकी आवश्यकता होती है, वही परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धि यदि पंद्रह वर्षोंमें घरमें रहते हुए, संसारका काम करते हुए, शास्त्रसे अविरुद्ध भोगोंको भोगते हुए मिल जाय तो फिर और क्या चाहिये? इससे सस्ता सौदा और क्या हो सकता है? हम सारी उम्र बिता देते हैं थोड़े-से धन-संग्रह करनेके लोभमें! जिसका संग्रह होना-न-होना भी अनिश्चित रहता है! परन्तु समस्त धनोंका मूल, समग्र धनपतियोंका एकमात्र स्वामी, समस्त देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पितृ, मनुष्य और राक्षस आदिके कुल धनकी जिस अतुल धन-राशिके एक अंशके कोट्यंशके साथ भी तुलना नहीं की जा

सकती ऐसा वह परमधन स्वयं यदि पंद्रह वर्षकी श्रद्धायुक्त सहज साधनासे अपने अस्तित्वके साथ तुम्हारे अस्तित्वको मिला लेता है तो बताओ फिर तुम्हें और किस वस्तुकी आवश्यकता रह जाती है ? जब स्वयं सम्राट्का ही पद मिल जाय, तब छोटे-छोटे खेत तो उसमें आप ही आ जाते हैं। तुम संसारका मामूली धन चाहते हो। वह सारे खजानेका स्वामित्व ही तुम्हें सौंप देता है। फिर मामूली धनकी प्राप्तिके लिये तो कोई गारंटी भी नहीं करता। सब समझदार लोग यों ही कहते हैं, भाई! उद्योग करो, तुम्हारे भाग्यमें होगा तो मिल जायगा, परन्तु इस परमधनकी प्राप्तिके लिये तो शास्त्र जिम्मा लेते हैं। ब्रह्मा स्वयं कहते हैं। इतिहास इस बातकी सत्यताका प्रमाण दे रहे हैं। भक्तोंकी गाथाएँ उच्चस्वरसे इस ध्रुव सत्यकी घोषणा कर रही हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी मिल सकते हैं, ऐसी स्थितिमें अविश्वासकी तो कोई बात ही नहीं रह जाती।

लोग कह सकते हैं कि 'हम घरका काम करते हुए प्रतिदिन इतने मन्त्रोंका जप कैसे करें? इतने जपमें कम-से-कम छः घंटेका समय चाहिये।' परन्तु उनका ऐसा कहना भूलसे होता है; यदि हमलोग समयका उपयोग सावधानीके साथ करें तो घर और आजीविकाके काममें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़कर भी इतना जप प्रतिदिन हो सकता है। उस देवमन्त्रके जपमें बाधा आती है जो स्नानकर शुद्ध हो एक समय एक जगह बैठकर किया जाता है। वैसे जपमें लगातार इतना समय लगाना कठिन होता है, परन्तु इस नाम-मन्त्रके जपमें तो उस तरहकी कोई अड़चन नहीं है। चलते, फिरते, बैठते, उठते, सोते, आजीविकाका काम करते—सब समय सभी अवस्थामें यह जप हो सकता है। यदि हमलोग हिसाब लगाकर देखें तो दिन-रातके चौबीस घंटेके समयमेंसे छः घंटे निद्राके बाद देकर बाकीके अठारह घंटे केवल शरीर और आजीविकाके कार्योंमें ही

नहीं व्यतीत होते। हमारा बहुत-सा समय तो असावधानीसे व्यर्थकी बातोंमें जाता है, यदि हमलोग वाणीका संयम करना सीख जायँ, बिना मतलब—बिना कार्यके बोलना छोड़ दें तो मेरी समझसे राजासे लेकर मजदूरतक सबको इतना नाम-जप प्रतिदिन करनेके लिये पूरा समय अनायास ही मिल सकता है। हम चेष्टा नहीं करते, केवल बहाना कर देते हैं। यदि चेष्टा करें, समयका मूल्य समझें तो एक क्षणको भी हरिके नाम बिना व्यर्थ नहीं जाने दें। कामके लिये जितने बोलनेकी आवश्यकता हुई, उतने शब्द बोल दिये फिर वाणीको उसी नाम-जपमें लगा दिया। इस प्रकार अभ्यास करते रहनेपर तो ऐसी आदत पड़ जाती है कि फिर नाम-जप छूटना कठिन हो जाता है, फिर तो साधककी ऐसी प्रबल इच्छा होने लगती है कि चौबीसों घंटे नाम-जप ही किया करूँ। उसे थोड़े जपमें संतोष नहीं होता। जैसे बड़े जोरकी भूख या प्यास लगनेपर मनुष्यका एक-एक क्षण कष्टसे बीतता है, इसी प्रकार नाम-प्रेमीका भी जो क्षण नामके बिना जाता है वह बड़े कष्टसे बीतता है।

जप उसीका नाम है जो संख्यासे किया जाता है। जपके तीन प्रकार पहले बतलाये जा चुके हैं। उनके सिवा साधकोंके सुभीतेके लिये और भी कई प्रकार बतलाये जाते हैं। जैसे—

(१) श्वासके द्वारा जप करना।

(२) नाड़ीसे जप करना।

(३) मानस-मूर्ति-पूजाकी भाँति नामाक्षरोंकी मनमें कल्पना-कर उनको बारंबार पढ़ना।

(४) भगवान्‌की मूर्तिकी कल्पना कर उसपर नामाक्षरोंकी गहनोंकी तरह कल्पना कर उनकी आवृत्ति करना।

अन्य भी कई प्रकार तथा भेद हैं, विस्तारभयसे यहाँ नहीं लिखे जाते, उपर्युक्त चारों प्रकारके जपका कुछ खुलासा कर देना आवश्यक है।

(१) प्रत्येक श्वासकी गतिकी ओर लक्ष्य रखना और श्वासके आने तथा जानमें श्वासके शब्दके साथ ही मन्त्रकी कल्पना करना, साथ ही जिह्वासे भी उपांशुरूपसे उच्चारण करते रहना, आरम्भमें माला रखना और श्वासके साथ होनेवाले प्रत्येक जपकी गिनती रखना। यदि इस प्रकार दो-चार मालाएँ भी प्रतिदिन जपनेका अभ्यास किया जाय तो मन बहुत शीघ्र स्थिर होकर नाममें लग सकता है। श्वासका जप बिना मनके नहीं होता। साधारण और उपांशुजप तो अभ्यास होनेपर मनके अन्यत्र रहनेपर भी हो सकते हैं, परन्तु श्वासका जप मन बिना नहीं होता, मन नहीं रहता है तो श्वासकी गतिका ध्यान छूट जाता है, केवल जीभसे जप होता रहता है। इसलिये श्वाससे जप करनेवालेको श्वासकी गतिकी ओर ध्यान रखना ही पड़ता है। जहाँ मन अन्यत्र गया कि जप छूटा। कबीरने कहा है—

साँसौ साँसा नाम जप। अरु उपाय कछु नाहिं।

(२) इसी प्रकार नाड़ीका जप है। नाड़ीकी गति श्वाससे भी सूक्ष्म है। हाथ, गले, मस्तक आदिकी नाड़ियाँ अँगुली लगानेपर चलती हुई मालूम होती हैं, अतएव पहले-पहल नाड़ीद्वारा जप करनेवालेको अँगुलियोंसे नाड़ीकी गतिका निरीक्षण करते हुए मनको उस गतिकी ओर लगाकर नाड़ीकी गतिके साथ ही उसके प्रत्येक ठपकेपर मन्त्रकी कल्पना करनी चाहिये। जीभ और मालाका प्रयोग श्वाससे जपके समान ही करना चाहिये।

(३) आँखें मूँदकर मन्त्रके पूरे अक्षरोंकी अपने सामने आकाशमें या हृदयमें कल्पना कर उन्हें बारंबार मनसे पढ़ता रहे, साथ ही जीभका प्रयोग भी करता रहे। गिनतीके लिये हाथमें माला रखे। मन्त्रके अक्षर, हो सके तो बराबर मनमें बनाये रखे या प्रत्येक मन्त्रके जपका आरम्भ करनेके समय कल्पना कर ले और मन्त्र पूरा होते ही मिटा दे। जिस तरीकेमें सुभीता मालूम हो वही करे।

(४) मनकी रुचिके अनुसार भगवान्‌की किसी मूर्तिकी मनमें

कल्पना कर मूर्तिके चरणोंमें या गलेकी मालामें या मस्तकमें, मुकुटमें या हस्त-पदादि अंगोंपर जड़े हुए नगीनोंके गहनोंके रूपमें मन्त्रके चमकते हुए सुन्दर अक्षरोंकी कल्पना कर आँखें मूँदे हुए उनका बारंबार मनसे जप करता रहे और सब बातें तीसरेके समान ही करे।

योगदर्शनकार कहते हैं—'**तज्जपस्तदर्थभावनम्**' उसके वाचक प्रणवका जप करता हुआ उसके वाच्य नामीकी ईश्वरकी भावना करे। वाणीसे जप और मनमें ध्यान दोनोंका एक साथ होना बहुत ही उत्तम साधन है। भगवान्ने भी यही कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८।१३)

'जो इस ॐरूप एकाक्षर नाम-ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और नामी मुझ परमात्माको स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।'

मनमें भगवान्की मूर्तिका, भगवद्भावका या भगवन्नामका ध्यान-स्मरण करते हुए जीभसे जप करना सर्वोत्तम जप है, इसीके अन्तर्गत उपर्युक्त चारों प्रकार भी हैं। इससे उतरकर उपांशु और उससे उतरकर साधारण (जोर-जोरसे उच्चारण करते हुए जप करना) है, जिसको जो सुलभ, सुविधाजनक और रुचिकर प्रतीत हो, वह अभ्यास उसीका करे। भगवन्नाम ऐसी वस्तु है जो किसी भी प्रकारसे ग्रहण करनेपर भी मंगलप्रद ही है। भगवन्नाम-जपमें रुचि और विश्वास होना चाहिये, फिर बेड़ा पार है। इतना स्मरण रखना चाहिये कि जो जप निष्कामभावसे नामीके ध्यानसे युक्त, प्रेमसहित, निरन्तर और गुप्त होता है, वही उत्तम-से-उत्तम समझा जाता है, अतएव यथासाध्य कुछ मालाएँ (कम-से-कम १४ मालाएँ) प्रतिदिन जपनी चाहिये। नियमसे जो काम होता है वह अनियमसे नहीं होता।

यदि निष्काम न आ सके तो विश्वास रखकर सकामभावसे ही जप करना चाहिये। भगवन्नाम-जपकी महिमासे आगे चलकर सकाम भी निष्काम हो सकता है। प्रातःस्मरणीय भक्तराज ध्रुवजीने राज्यकी इच्छासे वनमें जाकर ध्यानसहित मन्त्र-जप किया। उन्हें राज्य भी मिला और भगवान्‌का परमधाम भी। उन्हें सिद्धि भी बहुत शीघ्र मिली। थोड़े-से ही समयमें काम बन गया, इतना सब क्यों हो गया? इसीलिये कि ध्रुव दृढ़विश्वासी था। जिस समय मातासे उसे उपदेश मिला उसी समय बालक ध्रुव घरसे निकल पड़ा। रास्तेमें भगवान् नारद मिले। उन्होंने सहजमें राज्य दिलवानेका लोभ और वनके भीषण कष्टोंका भय दिखलाकर ध्रुवकी परीक्षा की, जब उसे पक्का पाया तो नारदजीने दया कर उसे भगवन्नामका मन्त्र दे दिया। ध्रुव दृढ़ निश्चयके साथ तन-मनकी सारी सुधि भुलाकर मन्त्रका जप करने लगा। भगवद्भावसे उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ा। साक्षात् नारायणको उसके सामने मूर्तिमान् होकर प्रत्यक्ष दर्शन देना पड़ा। आज हमलोगोंको भगवद्दर्शनमें जो देरी हो रही है इसका कारण यही है कि हमें नामपर पूरा विश्वास नहीं है। जितने अंशमें विश्वास है उतने अंशमें सिद्धि भी होती है।

भक्तराज श्रीहरिदासजी बड़े जोर-जोरसे उच्चारण करके नाम-जप किया करते थे। तीन लाख नाम-जपका उनका नियम था। रामचन्द्र खाँकी भेजी हुई वेश्या उन्हें डिगाने आयी; परन्तु तीन रात्रितक हरिदासजीके पवित्र मुखारविन्दसे निकली हुई परम पुनीत हरिध्वनिको सुनकर स्वयं पापपथसे डिग गयी और उसी क्षण दुराचार छोड़कर परम वैष्णवी बन गयी। तात्पर्य यह कि विश्वास और प्रेमके साथ नाम-जप होना चाहिये। किसी भी प्रकार हो नामका फल अमोघ है।

स्मरण

स्मरण जपके साथ भी रहता है और अलग भी। यों तो पहले स्मृति हुए बिना न जप होता है और न कीर्तन होता है; परन्तु बीचमें स्मरण छूट जानेपर भी जप और कीर्तन होते रहते हैं। जीभका अभ्यास हो जानेपर जप होता रहता है। ठीक मन्त्रोंके अनुसार ही मालाकी मणियोंपर भी हाथ चलता रहता है; परन्तु स्मरण नहीं रहता। स्मृति मनकी वृत्ति है। वाणी अभ्यासवश एक काम करती है, मन उस समय किसी दूसरी स्मृतिमें रमता रहता है। इसलिये भगवान्ने मनसहित वाणीके जपको उत्तम बतलाया। जिस जपमें नामीकी मूर्ति, उसके गुण, उसके भाव या नामकी स्मृति रहती है वह जप स्मरणयुक्त कहलाता है। जो जप केवल जिह्वासे होता है वह जप स्मरणरहित कहा जाता है। स्मरणरहितकी अपेक्षा स्मरणयुक्तका माहात्म्य अधिक है; क्योंकि उसमें मन-वाणी दोनों एक काम करते हैं। महात्मा पुरुषोंके वचन हैं कि जिसकी जबान और मन दोनों एक-से होते हैं, वही सच्चा साधु है। स्मरणयुक्त जपमें जबान और मन दोनोंकी एकतानता हो जाती है। इसीलिये उसका फल इतना विशेष है; परन्तु स्मरण ऐसा भी होता है जो केवल स्मरण ही कहलाता है, जप नहीं। जप वही होता है, जिसकी संख्या होती है। स्मरणकी कोई संख्या नहीं होती। जहाँतक स्मरणका पूरा अभ्यास न हो वहाँतक तो स्मरणयुक्त जप ही करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, परन्तु जब स्मरणका पूरा अभ्यास हो जाय तब फिर जपकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे अनन्य स्मरणकी विधि और उसका फल श्रीभगवान् बतलाते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

'जो पुरुष अनन्य चित्त होकर सदा-सर्वदा मुझे स्मरण करता है उस मुझे निरन्तर स्मरण करनेवाले योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।' चित्तमें दूसरे विषयको कभी स्थान न हो, प्रतिदिन और प्रतिक्षण उसीकी स्मृति बनी रहे। इस प्रकार नित्य लगे रहनेवालेके लिये भगवान् सहज (सस्ते) हो जाते हैं, परन्तु इस स्मरणका रूप कैसा होता है। भक्तराज कबीरजी कहते हैं—

सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे कामी काम।
एक पलक ना बीसरे, निसिदिन आठो याम॥
सुमिरनकी सुधि यों करो, ज्यों सुरभी सुत माँहि।
कह कबीर चारो चरत, बिसरत कबहूँ नाँहि॥
सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरे नहीं, पल पल लेत सँभाल॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजै तेहि संग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एकमें, जरत न मोड़ै अंग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारे आपको, होय जाय तेहि रंग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजे पल बीछुड़े, सत कबीर कह दीन॥

जैसे कामी आठ पहरमें एक क्षणके लिये भी स्त्रीको नहीं भूलता, जैसे गौ वनमें घास चरती हुई भी बछड़ेको सदा याद रखती है, जैसे कंगाल अपने टेंटके पैसेको पल-पलमें सँभाला करता है, जैसे हरिण प्राण दे देता है; परन्तु वीणाके स्वरको नहीं भूलना चाहता, जैसे बिना संकोचके पतंग दीपशिखामें जल मरता है; परन्तु उसके रूपको भूलता नहीं, जैसे कीड़ा अपने-आपको भुलाकर भ्रमरके स्मरणमें उसीके रंगका बन जाता है और जैसे

मछली जलसे बिछुड़नेपर प्राण त्याग कर देती है; परन्तु उसे भूलती नहीं। गोसाईंजी महाराजने भी कहा है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

स्मरणका यह स्वरूप है।

इस प्रकार जिनका मन उस परमात्माके नाम-चिन्तनमें रम जाता है वे तृप्त, पूर्णकाम और अकाम हो जाते हैं। उन्हें किसी भी वस्तुकी इच्छा अवशेष नहीं रह जाती।

भगवान्ने कहा है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १४)

'जिसने अपना चित्त मुझमें अर्पित कर दिया है, वह मुझे छोड़कर ब्रह्माजीका पद, स्वर्गका राज्य, समस्त भूमण्डलका चक्रवर्तित्व, पातालादि देशोंका आधिपत्य, अणिमादि योगकी सिद्धियाँ तथा मोक्ष—कुछ भी नहीं चाहता!'

यहाँपर कोई कह सकते हैं कि यह तो नामीके स्मरणकी कथा है। यहाँ नामकी कौन-सी बात है? इसका उत्तर यह है कि नामसे ही नामीका पता लगता है, हम यदि अपने पिताके स्वरूपका स्मरण करते हैं तो 'पिता' इस सम्बन्ध-नामका स्मरण पहले होता है, नाम बिना नामीकी कल्पना ही नहीं हो सकती। नाम ही नामीका परिचय कराता है। गोसाईंजीने बहुत ही सुन्दर कहा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥

रूप नामके अधीन ही देखा जाता है। किसीके हाथमें हीरा है;

परन्तु जबतक उस हीरेको वह हीरा नहीं समझता तबतक उसे रूपका ज्ञान नहीं होता। रूपका ज्ञान हुए बिना वह उसका मूल्य नहीं जानता। जब किसी जौहरीसे उसका नाम 'हीरा' जान लेता है तभी उसे उसकी बहुमूल्यताका ज्ञान होता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि नामका स्मरण हुए बिना नामीका ज्ञान नहीं होता। नामका कुछ दिनोंतक स्मरण करनेपर, साधकके अन्तरमें जो एक आनन्दका सरोवर बँधा पड़ा है उसका बाँध टूट जाता है, वह सुखकी प्रबल धारामें बह जाता है। उस समय उस नामरसके सामने उसे सब रस फीके मालूम होने लगते हैं। वह जोरसे पुकार उठता है कि—

पायो नाम चारु चिंतामनि उर कर तें न खसैहौं।

नामकी सुन्दर चिन्तामणि मुझे मिल गयी। अब मैं इसे हृदय और हाथोंसे कभी न जाने दूँगा। वह ऐसा क्यों कहता है? इसीलिये कि उसे इसमें वह सुख मिलता है जो बड़े-बड़े विषयी सम्राटोंको भी नसीब नहीं होता।

भगवान् कहते हैं—

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद् विषयात्मनाम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १२)

'मुझमें चित्त लगानेवाले और समस्त विषयोंकी अपेक्षा छोड़नेवाले भक्तको मुझसे जो परम सुख मिलता है वह सुख विषयासक्तचित्त लोगोंको कहाँसे मिल सकता है?

मन जितना ही विषयोंका चिन्तन करता है उतना ही संसारमें बँधता है; क्योंकि विषय-चिन्तनसे ही क्रमशः संग, काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और अन्तमें सर्वनाश होता है। मनमें पहले-पहल जब स्फुरणा उठती है तो वह तरंगके सदृश होती है, परन्तु वही आगे जाकर समुद्र बन जाती है। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले लोगोंको चाहिये कि वे मनमें विषयोंके बदले धीरे-धीरे

भगवान्‌को स्थान दें। उपर्युक्त युक्तियोंके द्वारा नाम-स्मरण करें। एक दृढ़ अभ्यासका नाश करनेके लिये उसके विरोधी दूसरे अभ्यासकी ही आवश्यकता होती है। अनभ्यस्त विषयके चिन्तनमें पहले-पहल मन ऊबता, अकुलाता और झल्लाता है; परन्तु दृढ़ताके साथ अभ्यास करते रहनेपर अन्तमें वह तदाकार बन ही जाता है। इसलिये हठसे भी मनको परमात्माके नाम-स्मरणमें लगाना चाहिये। नियम कर लेना चाहिये कि मनसे इतने नाम-जप प्रतिदिन अवश्य करेंगे। कम-से-कम उतना जप तो प्रतिदिन हो ही जाना चाहिये। स्मरणसे ही मनमें प्रेमकी उत्पत्ति होती है। एक स्त्री अपने नैहरमें है, उसका पति वहाँ नहीं है। पतिका रूप उसके सामने नहीं है; परन्तु पतिका नाम-स्मरण होते ही उसका मन प्रेमसे भर जाता है।

नाम-स्मरण करते-करते जब स्मरणकी बान पड़ जाती है तब तो मन कभी उसे छोड़ता ही नहीं। स्मरणसे क्या नहीं होता? यदि अन्तकालमें परमात्माके नामका स्मरण हो जाय तो उसके मोक्षमें जरा-सा भी सन्देह नहीं रह जाता। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

'जो पुरुष मृत्युकालमें मुझे स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं!' परन्तु अन्तकालमें परमात्माकी स्मृति किसे होती है जो '**सदा तद्भावभावितः**' होता है, अर्थात् सदा जिस भावका चिन्तन करता है अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण हुआ करता है। इसीलिये भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ!

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(गीता ८। ७)

'तू सदा-सर्वदा मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर, इस प्रकार मुझमें मन-बुद्धि अर्पित हो जानेसे तू निस्सन्देह मुझे ही प्राप्त होगा।'

ब्राह्मण हो तो वेदाध्ययन करे, क्षत्रिय हो तो रणमें जाय, वैश्य हो तो व्यापार करे, शूद्र हो तो सेवा करे। सब अपना-अपना काम करें, परन्तु करें, उसे याद रखते हुए। वैसे ही जैसे कि दुराचारिणी उपपतिको, सती पतिको, कृपण धनको और विषयी विषयको निरन्तर याद रखता है। पनिहारी सिरपर दो घड़े उठाकर चलती है, रास्तेमें दूसरोंसे बात भी करती है, परन्तु उसकी स्मृति रहती है सिरपर उठाये हुए उन दोनों घड़ोंमें! इस प्रकार क्षणमात्रके स्मरणसे ही बड़ा काम होता है। आजकल लोग माला फेरते हैं, हाथ रहता है गौमुखीमें, परंतु मन डोला करता है विषयोंमें। मन्त्र-जपमें गौणता होती है और विषयोंमें मुख्यता। इसीसे जप करते-करते बीच-बीचमें वे बोल उठते हैं।

एक सेठजी जप कर रहे थे, माला हाथमें थी, मुँहसे भी मन्त्रका उच्चारण करते थे; परन्तु उनका मन और ही अनेक बातोंके चिन्तनमें लगा हुआ था। पुत्र भी पास बैठा सन्ध्या कर रहा था। सेठजी माला फेरते-फेरते ही बीचमें बोल उठे 'अरे! कल सब ग्राहकोंके रुपये आ गये? राम राम राम राम। देख! तू बड़ा मूर्ख है, कहीं व्यापारमें भी सचाईसे कमाई होती है? राम राम राम राम! हाथीके दाँत दिखानेके दूसरे और खानेके दूसरे होते हैं—राम राम राम राम! नहीं तो व्यापारमें रस-कस कैसे बैठे? राम राम राम राम। माप-तौलमें जरा कस बैठना चाहिये—राम राम राम राम। मैं तो मर जाऊँगा फिर तेरा काम कैसे चलेगा? राम राम राम राम।'

इस तरह राम राम करनेवाले ढोंगी लोगोंके कारण ही नामपरसे लोगोंकी रुचि घटती है; परन्तु नामप्रेमियोंको इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। यदि कोई मूर्ख रत्नका दुरुपयोग भी करता है तो इससे रत्नका रत्नपना और उसकी बहुमूल्यता थोड़े ही घट

जाती है। कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्मरण सच्चा होनेसे ही शीघ्र फलप्रद होता है।

स्मरणके बाद आता है—

कीर्तन

कीर्तन जोर-जोरसे होता है और इसमें संख्याका कोई हिसाब नहीं रखा जाता। यही जप और कीर्तनमें भेद है, जप जितना गुप्त होता है उतना ही उसका अधिक महत्त्व है; परन्तु कीर्तन जितना ही गगनभेदी स्वरमें होता है उतना ही उसका महत्त्व बढ़ता है। कीर्तनके साथ संगीतका सम्बन्ध है। कीर्तनमें पहले-पहल स्वरोंकी एकतानता करनी पड़ती है। कीर्तनके कई प्रकार हैं।

(१) अकेले ही भगवान्‌के किसी नामको आर्तभावसे पुकार उठना। जैसे द्रौपदी और गजराज आदिने पुकारा था।

(२) अकेले ही भगवान्‌के गुणनाम, कर्मनाम, जन्मनाम और सम्बन्धनामोंका विस्तारपूर्वक या संक्षेपमें जोर-जोरसे उच्चारण करना।

(३) भगवान्‌के किसी चरित्र या भक्तचरित्रके किसी कथा-भागका गान करना और बीच-बीचमें नाम-कीर्तन करना।

(४) कुछ लोगोंका एक साथ मिलकर प्रेमसे भगवन्नाम गान करना।

(५) अधिक लोगोंका एक साथ मिलकर एक स्वरसे नाम-कीर्तन करना।

इसके सिवा और भी अनेक भेद हैं। जब मनुष्य किसी दुःखसे घबराकर जगत्‌के सहायकोंसे निराश होकर भगवान्‌से आश्रय-याचना करता हुआ जोरसे उनका नाम लेकर पुकारता है तब भगवान् उसी समय भक्तकी इच्छाके अनुकूल स्वरूप धारण-कर उसे दर्शन देते और उसका दुःख दूर करते हैं।

श्रीभगवान्के रामावतार और कृष्णावतारमें असुरोंके द्वारा पीड़ित सुर-मुनियोंने मिलकर पहले आर्तस्वरसे कीर्तन ही किया था।

जिस समय एकवस्त्रा देवी द्रौपदी कौरवोंके दरबारमें केश पकड़कर लायी जाती है, दुर्योधन उसके वस्त्रहरणके लिये अमित बलशाली दुःशासनको आज्ञा देता है, उस समय द्रौपदीको यह कल्पना ही नहीं होती कि इस बड़े-बूढ़े, धर्मज्ञ, विद्वान् और वीरोंकी सभामें ऐसा अन्याय होगा; परन्तु जब दुःशासन सचमुच वस्त्र खींचने लगता है तब द्रौपदी घबराकर राजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य आदि तथा अपने वीर पाँच पतियोंकी सहायता चाहती है; परन्तु भिन्न-भिन्न कारणोंसे जब कोई भी उस समय द्रौपदीको छुड़ानेके लिये तैयार नहीं होता तब वह सबसे निराश हो जाती है। सबसे निराश होनेके बाद ही भगवान्की अनन्य स्मृति हुआ करती है। दुःशासन बड़े जोरसे साड़ी खींचता है। एक झटका और लगते ही द्रौपदीकी लज्जा जा सकती है। द्रौपदीकी उस समयकी दीन अवस्था हमलोगोंकी कल्पनामें भी पूरी नहीं आ सकती। महलोंके अंदर रहनेवाली एक राजरानी, पृथ्वीके सबसे बड़े पाँच वीरोंद्वारा रक्षिता कुलरमणी रजस्वला-अवस्थामें बड़े-बूढ़े तथा वीर पतियोंके सामने नंगी की जाती हो, उस समय उसको कितनी मर्मवेदना होती है इस बातको वही जानती है। कवियोंकी कलम शायद कुछ कल्पना करे। खैर, द्रौपदीने निराश होकर भगवान्का स्मरण किया और वह व्याकुल होकर पुकार उठी—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

'हे द्वारकावासी गोविन्द! हे गोपीजनप्रिय कृष्ण! क्या मुझ कौरवोंसे घिरी हुईको तू नहीं जानता? हे नाथ, रमानाथ, व्रजनाथ, दुःखनाशक जनार्दन! मुझ कौरवरूपी समुद्रमें डूबी हुईका उद्धार कर! हे विश्वात्मा! विश्वभावन कृष्ण! हे महायोगी कृष्ण! कौरवोंके बीचमें हताश होकर तेरे शरण आनेवाली मुझको तू बचा!'

व्याकुलतापूर्ण नाम-कीर्तनका फल तत्काल होता है, जब सबकी आशा छोड़कर केवलमात्र परमात्मापर भरोसा कर उसे एक मनसे कोई पुकारता है तब वह करुणासिन्धु भगवान् एक क्षण भी निश्चिन्त और स्थिर नहीं रह सकता। उसे भक्तके कामके लिये दौड़ना ही पड़ता है। नामकी पुकार होते ही द्रौपदीके वस्त्रोंमें भगवान् आ घुसे, वस्त्रावतार हो गया! वस्त्रका ढेर लग गया। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली वीर दुःशासनकी भुजाएँ फटने लगीं—'**दस हजार गज बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर!**'
भक्त सूरदासजी कहते हैं—

दुःशासनकी भुजा थकित भइ बसनरूप भए स्याम!

साड़ीका छोर न आया! एक कवि कहते हैं—

पाय अनुसासन दुःहसासन कै कोप धायो,
द्रुपदसुताको चीर गहे भीर भारी है।
भीषम, करन, द्रोन बैठे व्रतधारी तहाँ,
कामिनीकी ओर काहू नेक न निहारी है॥
सुनिकै पुकार धाये द्वारिकाते यदुराई,
बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल भारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है॥

दुःशासन थककर मुँह नीचा करके बैठ गया, द्रौपदीकी लाज और उसका मान रह गया। भगवन्नाम-कीर्तनका फल प्रत्यक्ष हो गया! जय भगवान्‌के पावन नामकी जय!

इसी प्रकार गजराजकी कथा प्रसिद्ध है। वहाँ भी इसी तरहकी व्याकुलतापूर्ण नामकी पुकार थी। यदि आज भी कोई यों ही सच्चे मनसे व्याकुल होकर पुकारे तो यह निश्चय है कि उसके लोक-परलोक दोनोंकी सिद्धि निश्चितरूपेण हो सकती है। इस बातका कई लोगोंको कई तरहका प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव प्रातःकाल, सायंकाल, रातको सोते समय भगवन्नामका कीर्तन अवश्य करना चाहिये। जहाँतक हो सके कीर्तन निष्काम एवं केवल प्रेमभावसे ही करना उचित है।

यह तो व्यक्तिगत नाम-कीर्तनकी बात हुई। इसके बाद समुदायमें नाम-कीर्तनका तरीका बतलाया जाता है। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तमें कीर्तनकारोंके अलग समुदाय हैं, जो हरिदास कहलाते हैं। ये लोग समय-समयपर मन्दिरों, धर्मसभाओं और उत्सवोंके अवसरपर बुलाये जाते हैं, इनका कीर्तन बड़ा सुन्दर होता है। भगवान्‌की किसी लीला-कथाको या भक्तोंके किसी चरित्रको लेकर यह लोग कीर्तन करते हैं। आरम्भमें किसी भक्तका कोई एक श्लोक या पद गाते हैं और उसीपर उनका सारा कीर्तन चलता है, अन्तमें उसी श्लोक या पदके साथ कीर्तन समाप्त किया जाता है। आरम्भमें, अन्तमें और बीच-बीचमें हरि-नामकी धुन लगायी जाती है जिसमें श्रोतागण भी साथ देते हैं। ये लोग गाना-बजाना भी जानते हैं और कम-से-कम हारमोनियम तथा तबलोंके साथ इनका कीर्तन होता है। बीच-बीचमें सुन्दर पद भी गाते हैं। इसमें दोष यही है कि इस प्रकारके अधिकांश कीर्तनकारोंका ध्यान भगवन्नामकी अपेक्षा सुर-अलापकी तरफ अधिक रहता है। गुजरातमें विवाहके अवसरपर एक दिन हरिकीर्तन करानेकी प्रथा है जो बड़ी ही सुन्दर मालूम होती है। अन्य अनेक प्रमादोंमें धनका नाश किया जाता है, वहाँ यदि इस प्रथाका प्रचार किया जाय तो लोगोंके मनोरंजनके साथ-ही-साथ

बड़ा पारमार्थिक लाभ भी हो सकता है। यह भी एक तरहका संघकीर्तन है।

इसके बाद वह कीर्तन आता है जो सर्वश्रेष्ठ है। जिसका इस युगमें विशेष प्रचार महाप्रभु श्रीश्रीगौरांगदेवजीकी कृपासे हुआ। इस कीर्तनका प्रकार यह है। बहुत-से लोग एक स्थानपर एकत्रित होते हैं। एक आदमी एक बार पहले बोलता है, उसके पीछे-पीछे और सब बोलते हैं, पर आगे चलकर सभी एक साथ बोलने लगते हैं। किसी एक नामकी धुनको सब एक स्वरसे बोलते हैं। ढोल, करताल, झाँझ और तालियाँ बजाते हुए गला खोलकर, लज्जा छोड़कर बोलते हैं। जब धुन जम जाती है तब स्वरका ध्यान आप ही छूट जाता है। कीर्तन करनेवाला दल धुनमें मस्त हो जाता है, फिर कीर्तनकी मस्तीमें नृत्य आरम्भ होता है। रग-रग नाचने लगती है, आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगती है, शरीर-ज्ञान नष्ट हो जाता है। नवद्वीप, वृन्दावन, अयोध्या और पण्ढरपुरमें ऐसे कीर्तन बहुत हुआ करते हैं। यह कीर्तन किसी एक स्थानमें भी होता है और घूमते हुए भी होता है। लेखकका विश्वास है कि ऐसे प्रेमभरे कीर्तनमें कीर्तनके नायक भगवान् स्वयं उपस्थित रहते हैं। उनका यह प्रण है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(आदिपु० १९। ३५)

'मैं वैकुण्ठमें या योगियोंके हृदयमें नहीं रहता। मेरे भक्त जहाँ मिलकर मेरा गान करते हैं मैं वहीं रहता हूँ।'

इस प्रकारके कीर्तनमें प्रेमका सागर उमड़ता है, जो जगत्भरको पावन कर देता है। इस कीर्तनमें ब्राह्मण-चाण्डाल सभी शामिल हो सकते हैं। जिसको प्रेम उपजा, वही सम्मिलित हो गया, कोई रुकावट नहीं। **'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई। हरिको भजै सो हरिका होई॥'** वही बड़ा है, वही श्रेष्ठ है जो प्रेमसे नाम-कीर्तनमें

मतवाला होकर स्वयं पावन होता है और दूसरोंको पावन करता है। इस कीर्तनसे एक बड़ा लाभ और होता है। हरिनामकी तुमुल ध्वनि पापी, पतित, पशु, पक्षीतकके कानोंमें जाकर सबको पवित्र और पापमुक्त करती है। जिसके श्रवणरन्ध्रसे भगवन्नाम उसके हृदयके अंदर चला जाता है उसीके पाप-मलको वह धो डालता है।

वामनपुराणका वचन है—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

'पृथ्वीमें नारायण-नामरूपी नर प्रसिद्ध चोर कहा जाता है; क्योंकि वह कानोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंके अनेक जन्मार्जित पापोंके सारे संचयको एकदम चुरा लेता है।'

जिस हरि-नाम-कीर्तनका ऐसा प्रताप है, जो पुरुष जीभ पाकर भी उसका कीर्तन नहीं करते वे निश्चय ही मन्दभागी हैं—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणी स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो जिह्वाको पाकर भी कीर्तनीय भगवन्नामका कीर्तन नहीं करते, वे दुर्मति मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनपर चढ़नेसे वंचित रह जाते हैं।'

कुछ लोग कहा करते हैं कि हमें जोर-जोरसे भगवन्नाम लेनेमें संकोच होता है। मैंने ऐसे बहुत-से अच्छे-अच्छे लोगोंको देखा है कि जिन्हें पाँच आदमियोंके सामने या रास्तेमें हरिनामकी पुकार करनेमें लज्जा आती है। झूठ बोलनेमें, कठोर वाणीके प्रयोगमें, परनिन्दा-परचर्चामें, अनाचार-व्यभिचारकी बातें करनेमें लज्जा नहीं आती, परंतु भगवन्नाममें लज्जा आती है। यह बड़ा ही दुर्भाग्य है! यदि भगवन्नामसे सभ्यतामें बट्टा लगता हो तो ऐसी विषमयी

शुष्क सभ्यताको दूरसे ही नमस्कार करना चाहिये। धन्य वही है जिसके भगवन्नामके कीर्तनमात्रसे, श्रवण और स्मरणमात्रसे रोमांच हो जाता है। नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं, कण्ठ रुक जाता है। वास्तवमें वही पुरुष मनुष्य नामके योग्य है। ऐसे पुरुष ही जगत्‌को पावन करते हैं। भगवान् कहते हैं—

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

'जिसकी वाणी गद्‌गद हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बारंबार ऊँचे स्वरसे नाम ले-लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है, ऊँचे स्वरसे मेरा गुणगान करता है ऐसा भक्तिमान् पुरुष अपनेको पवित्र करे इसमें तो बात ही क्या है; परंतु वह अपने दर्शन और भाषणादिसे जगत्‌को पवित्र कर देता है।'

यही कारण था कि कीर्तनपरायण भक्तराज नारदजी और श्रीगौरांगदेव आदिके दर्शन और भाषण आदिसे ही अनेकों जीवोंका उद्धार हो गया।

महाप्रभुके कीर्तनको सुनकर वनमें रहनेवाले भीषण सिंह, भालू आदि हिंस्र पशु भी प्रेममें निमग्न होकर नाम-कीर्तन करते हुए नाचने लगे थे। भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन!

गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

'जो मेरे नामोंका गान करता हुआ मुझे अपने समीप मानकर मेरे सामने नाचता है मैं सत्य कहता हूँ कि मैं उसके द्वारा खरीदा जाता हूँ।'

कीर्तनकी महिमा क्या कही जाय? जो कभी कीर्तन करता है उसी भाग्यवान्‌को इसके आनन्दका पता है। जिसको यह आनन्द प्राप्त करना हो वह स्वयं करके देख ले। वाणी इस आनन्दके रूपका वर्णन नहीं कर सकती। क्योंकि यह '**मूकास्वादनवत्**' (नारद-भक्ति० ५२) गूँगेके गुड़के समान केवल अनुभवकी वस्तु है।

यहाँतक बहुत संक्षेपसे नाम, जप, स्मरण और कीर्तनसम्बन्धी कुछ बातें कही गयीं। साधकोंके सुभीतेके लिये यह भेद-कल्पना है। नहीं तो जप, स्मरण या कीर्तन सब एक ही वस्तु है। श्रीभगवान्‌के परम पावन नामका किसी तरहसे भी ग्रहण हो, वह कल्याणकारी ही है। नामके ही प्रतापसे प्रह्लादने जड़मेंसे चेतनरूप होकर भगवान्‌को अवतार लेनेके लिये बाध्य कर दिया। नामके प्रतापसे वह अग्नि, साँप आदिसे बच गया, जहर पीकर भी नहीं मरा। नामके ही प्रतापसे मीराके लिये जहर हरिचरणामृत हो गया। नामके ही प्रतापसे नारद, व्यास, शुकदेवादि जगत्-पूज्य हैं। नामके ही प्रतापसे ब्रह्माजी सृष्टि रचनेमें समर्थ हुए। नामके ही प्रतापसे पानीपर पत्थर तैर गये। नामके ही प्रतापसे हनुमान्‌जी चार सौ योजनका सागर अल्पायाससे लाँघ गये। नामके ही प्रतापसे श्रीशंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, निम्बार्क, चैतन्य आदि आचार्योंने भगवद्भावको प्राप्त किया और उसीके प्रतापसे आज उनके शिष्य और वंशज पूजित हो रहे हैं। नामकी महिमा कहाँतक कही जाय! शेष, महेश, गणेश, शारदा भी जिसका वर्णन नहीं कर सकते, उसका वर्णन मैं क्षुद्रमति क्या करूँ? जो एक बार नामका मजा चख लेता है, वह पागल हो जाता है, उसके सारे पाप-ताप मिट जाते हैं। वह स्वयं मुक्त होकर दूसरोंके लिये मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर देता है। संतोंने इसीके बलसे जनताको मुक्तिकी राह बतलानेमें सफलता प्राप्त की थी। नाम ही जीवन है, नाम ही धन है, नाम ही परिवार है, नाम ही इज्जत है, नाम ही कीर्ति है, नाम ही स्वर्ग है, नाम ही अमृत है।

न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम्।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम्॥
न नामसदृशस्त्यागो न नामसदृशः शमः।
न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः॥
नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः।
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः॥
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः।
नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः॥
नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः॥

'नामके समान न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है, न फल है, न दान है, न शम है, न पुण्य है और न कोई आश्रय है। नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम शान्ति है, नाम ही परम निष्ठा है, नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम बुद्धि है, नाम ही परम प्रीति है, नाम ही परम स्मृति है, नाम ही जीवका कारण है, नाम ही प्रभु है, नाम ही परम आराध्य है और नाम ही परम गुरु है!' भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन—

नामयुक्ताञ्जनान् दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
स याति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढमानसः।
नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन॥

'नामयुक्त पुरुषोंको देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होता है, वह परमधामको प्राप्त होकर मुझ विष्णुके साथ आनन्द करता है। अतएव हे कौन्तेय! दृढ़ चित्तसे नाम-भजन करो। नामयुक्त व्यक्ति मुझे बड़ा प्रिय है। हे अर्जुन! तुम नामयुक्त होओ।'

यदि भारतीय हिंदू-जातिमें कभी एकता हो सकती है, यदि जगत्का सारा आस्तिक-समाज कभी प्रेमके एक सूत्रमें बँध सकता

है, यदि कभी जगत्‌में विश्वप्रेमका पूरा प्रसार हो सकता है तो मेरी समझसे वह भगवन्नामसे ही सम्भव है! आज भगवान्‌को भूलकर लोग कार्य करते हैं, इसीलिये तो उन्हें सफलता नहीं मिलती। मैं तो सबसे यही प्रार्थना करता हूँ कि वैर-विरोध, हिंसा-मत्सर, काम-क्रोध, असत्य, स्तेयका यथासाध्य परित्याग कर सब श्रीभगवन्नामके साधनमें लग जायँ। मेरी समझमें इसीसे लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। (१) नामप्रेमियोंका संग, (२) प्रतिदिन नाम-जपका कुछ नियम, (३) भोगोंमें वैराग्यकी भावना और (४) संतोंके जीवनचरित्रका अध्ययन—ये नाम-साधनमें बड़े सहायक होते हैं। इन चारोंकी सहायतासे नाम-साधनमें सभीको लगना चाहिये। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि नामसे असम्भव भी सम्भव हो सकता है और इसके साधनमें किसीके लिये कोई रुकावट नहीं है। ऊँचे वर्णका हो, नीचेका हो, पण्डित हो, मूर्ख हो सभी इसके अधिकारी हैं, बल्कि ऊँचा वही है, बड़ा वही है, जो भगवन्नामपरायण है, जिसके मुख और मनसे निरन्तर विशुद्ध प्रेमपूर्वक श्रीभगवन्नामकी ध्वनि निकलती है।

गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रवर सोइ।
तुलसी जो रामहि भजें, जैसेहु कैसेहु होइ॥
तुलसी जाके बदनते, धोखेहु निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी, मोरे तनुको चाम॥
तुलसी भक्त श्वपच भलो, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि कामको, जहाँ न हरि को नाम॥
अति ऊँचो भूधरनपर, भुजगनके अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥

सब मिलकर बोलो श्रीभगवन्नामकी जय!

साधन नाम-सम नहिं आन।
जपत सिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान॥
नामके बल मिटत भीषन असुभ भाग्य-बिधान।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान॥
नाम टेरत टरत दारुन बिपति सोक महान।
आर्त्तकरि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान॥
नामके परतापतें जलपर तरे पाषान।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान॥
नाम-बल संभव सकल जे कछु असंभव जान।
धन्य ते नर रहत जिनके नाम रटकी बान॥
पाप-पुंज प्रजारिबे हित प्रबल पावक-खान।
होत छिनमें छार, निकसत नाम जान-अजान॥
नाम-सुरसरिमें निरन्तर करत जे जन न्हान।
मिटत तीनों ताप, मुख नहिं होत कबहुँ मलान॥
नाम आश्रित जननके मन बसत नित भगवान।
जरत खरत कुबासना सब तुरत लज्जा-मान॥
नाम जीवन, नाम अमरित, नाम सुखको थान।
नाम-रत जे नाम पर, ते पुरुष अति मतिमान॥
नाम नित आनंद-निरझर, अति पुनीत पुरान।
मुक्त सत्वर होत जे जन करत सादर पान॥
नाम जपत सुसिद्ध जोगी बनत समरथवान।
नामतें उपजत सुभगति, विराग सुभ बलवान॥
नामके परताप दीखत प्रकृति-दीप बुझान।
नाम-बल ऊगत प्रभामय भानु तत्त्व-ज्ञान॥
नामकी महिमा अमित, को सकै करि गुनगान।
रामतें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्रीभगवान॥